Journal Homepage: www.ijrpr.com ISSN: 3049-0103 (Online)

WWW.IJARPR.COM

International Journal of Advance Research Publication and Reviews

Vol 03, Issue 9, pp 56-67, September, 2026

समावेशी शिक्षा का पारिस्थितिकी तंत्र: परिवार, समुदाय और सरकार की सहभागी भूमिका

डॉ. मो. फिरोज़ आलम*[1], *अतिया प्रवीन*[2], *डॉ. मो. मौसुफ रज़ा*[3]

[1,2,3] सहायक प्रोफेसर, मानू (MANUU), कॉलेज ऑफ टीचर एजुकेशन, दरभंगा, बिहार

*raza.jmi09@gmail.com

सारांश :

समावेशी शिक्षा समकालीन शिक्षा विमर्श की एक केंद्रीय अवधारणा है, जो सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा और समान अवसर के सिद्धांतों पर आधारित है। प्रस्तुत शोध आलेख समावेशी शिक्षा के एक समन्वित पारिस्थितिकी तंत्र का विश्लेषण करता है, जिसमें परिवार, समुदाय और शासन तीन परस्पर संबद्ध हितधारकों के रूप में कार्य करते हैं। अध्ययन का सैद्धांतिक आधार ब्रॉन्फेनब्रेनर का पारिस्थितिक तंत्र सिद्धांत तथा विकलांगता का सामाजिक मॉडल है, जिनके माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि समावेशी शिक्षा केवल विद्यालय-स्तरीय पहल नहीं, बल्कि बहु-स्तरीय सामाजिक और नीतिगत सहयोग की प्रक्रिया है। लेख में भारतीय परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016 तथा समग्र शिक्षा अभियान के संदर्भ में समावेशी शिक्षा की वर्तमान स्थिति, चुनौतियों और संभावनाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि परिवार बच्चों के भावनात्मक और विकासात्मक आधार को सुदृढ़ करता है, समुदाय सामाजिक पूंजी और स्वीकृति का वातावरण निर्मित करता है, जबकि शासन नीतिगत ढाँचा, संसाधन और संस्थागत समर्थन प्रदान करता है। लेख यह तर्क प्रस्तुत करता है कि समावेशी शिक्षा की प्रभावशीलता इन तीनों हितधारकों के सक्रिय समन्वय पर निर्भर करती है। अंततः अध्ययन एक सहयोगात्मक शैक्षिक पारिस्थितिकी तंत्र की आवश्यकता पर बल देता है, जो प्रत्येक बच्चे के लिए समान, सम्मानजनक और सशक्तिकरणकारी शिक्षण वातावरण सुनिश्चित कर सके।

प्रमुख शब्द: **समावेशी शिक्षा, परिवार-समुदाय भागीदारी, पारिस्थितिक तंत्र सिद्धांत, दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016, सामाजिक समावेशन, नीति ढांचा**

1. प्रस्तावना

समावेशी शिक्षा का विमर्श आज वैश्विक शिक्षा एजेंडे पर केंद्रीय स्थान रखता है। यह मात्र एक शैक्षणिक पद्धति न होकर, मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, बाल अधिकारों पर अभिसमय और विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर अभिसमय (UNCRPD) जैसे ऐतिहासिक दस्तावेजों में निहित मानवीय गरिमा और सामाजिक न्याय के दर्शन की व्यावहारिक अभिव्यक्ति है।

इस अवधारणा को मूर्त रूप देने के लिए हम दो बाल्य-आख्यानों पर विचार कर सकते हैं। प्रथम आख्यान है सात वर्षीय *आरोही* का, जिसे सेरेब्रल पाल्सी है। आरोही के माता-पिता न केवल उसे प्रतिदिन स्कूल छोड़ने जाते हैं, बल्कि शिक्षकों से नियमित संवाद स्थापित करते हैं और घर पर अधिगम में सहायता प्रदान करते हैं। जब स्कूल में रैंप की कमी सामने आई, तो स्थानीय समुदाय ने धन संग्रह कर इस बाधा को दूर किया। एक स्थानीय स्वयंसेवी संगठन ने सहायक तकनीक उपलब्ध कराई। सरकार ने दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम के तहत छात्रवृत्ति प्रदान की और जिला शिक्षा विभाग ने शिक्षकों को समावेशी शिक्षा का प्रशिक्षण दिया। आरोही की कहानी उस संभावना का प्रतीक है, जो परिवार, समुदाय और शासन के समन्वित प्रयासों से साकार होती है।

दूसरा आख्यान है आठ वर्षीय *रेवंत* का, जिसे ऑटिज्म है। रेवंत के माता-पिता उसे नियमित स्कूल में दाखिला दिलाना चाहते हैं, लेकिन स्कूल प्रशासन संसाधनों की कमी का हवाला देता है। समुदाय में विकलांगता से जुड़ी भ्रांतियाँ प्रचलित हैं। सरकारी योजनाओं की जानकारी का अभाव है, और शिक्षकों ने कभी समावेशी शिक्षा का प्रशिक्षण नहीं लिया। परिणामस्वरूप, रेवंत या तो घर पर बैठा रहता है या किसी विशेष स्कूल में चला जाता है, जहाँ उसका सामान्य समाज से संपर्क नहीं होता।

ये दो आख्यान एक मौलिक प्रश्न की ओर संकेत करते हैं: समावेशी शिक्षा को सफल बनाने के लिए क्या आवश्यक है? क्या केवल सरकारी नीतियाँ पर्याप्त हैं? या केवल परिवारों का प्रयास? या फिर समुदाय की भागीदारी ही निर्णायक है?

इस अध्याय का केंद्रीय तर्क यह है कि *समावेशी शिक्षा एक पारिस्थितिकी तंत्र है*, जिसमें परिवार, समुदाय और सरकार तीन अन्योन्याश्रित घटक हैं। जिस प्रकार किसी पारिस्थितिकी तंत्र में विविध जैविक और अजैविक घटकों के बीच संतुलन आवश्यक होता है, उसी प्रकार समावेशी शिक्षा के पारिस्थितिकी तंत्र में इन तीनों के बीच

संतुलन और समन्वय अनिवार्य है। किसी एक घटक की कमी पूरे तंत्र को असंतुलित कर देती है, और सबसे अधिक नुकसान उन बच्चों को होता है जो पहले से ही हाशिए पर हैं।

2. समावेशी शिक्षा: अवधारणात्मक स्पष्टता और सैद्धांतिक आधार

2.1 समावेशी शिक्षा की अवधारणा

समावेशी शिक्षा की अवधारणा प्रायःविकलांग बच्चों तक सीमित कर दी जाती है, जबकि यह इससे कहीं व्यापक है। यूनेस्को (1994) के अनुसार, "समावेशी शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो विविधता को स्वीकार करती है, सभी शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं का जवाब देती है, और सीखने की प्रक्रिया में सभी की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करती है।"

एक समावेशी कक्षा की कल्पना कीजिए जहाँ बच्चे विविध भाषाई पृष्ठभूमियों, धर्मों, शारीरिक क्षमताओं, आर्थिक स्तरों और सीखने की गतियों के साथ उपस्थित हों। समावेशी शिक्षा यह नहीं कहती कि इन सभी को एक समान पढ़ाया जाए। बल्कि यह कहती है कि शिक्षा प्रणाली को इतना लचीला बनाया जाए कि यह हर बच्चे की जरूरतों को पूरा कर सके। प्रोफेसर मेल आइंस्को के शब्दों में, "समावेशन यह नहीं है कि बच्चों को एक मौजूदा प्रणाली में कैसे समायोजित किया जाए, बल्कि यह है कि प्रणाली को कैसे बदला जाए ताकि वह सभी बच्चों की विविधता को समायोजित कर सके।"

2.2 ऐतिहासिक विकास

समावेशी शिक्षा के ऐतिहासिक विकास को तीन चरणों में समझा जा सकता है:

बहिष्करण और पृथक्करण का युग: 20वीं सदी के मध्य तक, जो बच्चे प्रचलित "सामान्यता" की परिधि से बाहर थे, चाहे वह शारीरिक विकलांगता, मानसिक स्वास्थ्य चुनौतियाँ, या सामाजिक-सांस्कृतिक भिन्नताएँ हों, उन्हें या तो शिक्षा से वंचित रखा जाता था या पृथक संस्थानों में भेज दिया जाता था। इस युग में शासन की भूमिका न्यूनतम थी, समुदाय में विकलांगता को कलंक के रूप में देखा जाता था, और परिवार अकेले ही इस बोझ को उठाता था।

एकीकरण का चरण: 1970-80 के दशक में यह विचार विकसित हुआ कि विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को सामान्य स्कूलों में प्रवेश दिया जाना चाहिए। इसे "एकीकरण" कहा गया। लेकिन इस दृष्टिकोण में यह मान लिया गया कि बच्चे को स्कूल की मौजूदा व्यवस्था में ढलना होगा। डॉ. सुसान स्टेनबैक की आलोचना उल्लेखनीय है: "एकीकरण में बच्चे को नदी में तैरना सिखाया जाता है, जबकि समावेशन में नदी को बच्चे के अनुकूल बनाया जाता है।"

समावेशन की अवधारणा: 1994 में सलामांका वक्तव्य ने समावेशी शिक्षा को वैश्विक मान्यता दी। इसने स्पष्ट किया कि समस्या बच्चे में नहीं, बल्कि शिक्षा प्रणाली में है। यहीं से परिवार, समुदाय और शासन की समन्वित भूमिका की अवधारणा विकसित हुई।

2.3 सैद्धांतिक आधार

2.3.1 ब्रॉन्फेनब्रेनर का पारिस्थितिक तंत्र सिद्धांत

यूरी ब्रॉन्फेनब्रेनर (1979) द्वारा प्रतिपादित पारिस्थितिक तंत्र सिद्धांत मानव विकास को समझने का एक बहुस्तरीय ढाँचा प्रदान करता है। यह सिद्धांत इस तथ्य को रेखांकित करता है कि बच्चे का विकास अलग-थलग नहीं होता, बल्कि विभिन्न परतों में व्यवस्थित वातावरण के पारस्परिक प्रभाव से निरंतर आकार लेता है। ब्रॉन्फेनब्रेनर ने इन परतों को पाँच श्रेणियों में वर्गीकृत किया:

- ***सूक्ष्म तंत्र (Microsystem):*** यह सबसे आंतरिक परत है, जिसमें बच्चे के निकटतम वातावरण के तत्व शामिल हैं जैसे परिवार, विद्यालय, पड़ोस और सहपाठी इत्यादि। इस स्तर पर बच्चे के साथ सबसे अधिक सीधा और सतत संपर्क होता है। परिवार की भूमिका यहाँ सबसे महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि यह बच्चे की पहचान, सुरक्षा और प्रारंभिक अधिगम का प्राथमिक स्रोत होता है।

- ***मध्य तंत्र (Mesosystem):*** यह स्तर विभिन्न सूक्ष्म तंत्रों (Microsystems) के बीच के अंतर्संबंधों को दर्शाता है। उदाहरण के तौर पर, परिवार और विद्यालय के बीच का संवाद या माता-पिता और शिक्षकों का आपसी जुड़ाव इसी तंत्र के अंतर्गत आता है। जब नियमित अभिभावक-शिक्षक बैठकों और सूचनाओं के निरंतर आदान-प्रदान के माध्यम से यह कड़ी मजबूत होती है, तो बच्चे के लिए एक अधिक सुसंगत और सहायक वातावरण का निर्माण होता है। वास्तव में, यह स्तर परिवार और व्यापक समुदाय के बीच सक्रिय सहभागिता का एक महत्वपूर्ण सूचक है।

- ***बाह्य तंत्र (Exosystem):*** इस तंत्र में वे सामाजिक संरचनाएँ और संस्थान शामिल हैं, जो बच्चे के साथ प्रत्यक्ष रूप से नहीं जुड़े होते, फिर भी उसके विकास को परोक्ष रूप से गहराई से प्रभावित करते हैं। इसमें माता-पिता का कार्यस्थल, स्थानीय प्रशासन, सामुदायिक संगठन और मीडिया जैसे कारक आते हैं। उदाहरण के लिए, यदि किसी अभिभावक के कार्यस्थल पर अवकाश की नीतियां लचीली नहीं हैं, तो इसका सीधा असर बच्चे की स्वास्थ्य संबंधी जरूरतों या थेरेपी सत्रों पर पड़ता है क्योंकि माता-पिता समय नहीं निकाल पाते। यह स्तर स्पष्ट करता है कि समुदाय और शासन की नीतियां किस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से बच्चे के जीवन की गुणवत्ता निर्धारित करती हैं।

- ***वृहत तंत्र (Macrosystem):*** यह सबसे बाहरी परत है, जिसमें व्यापक सांस्कृतिक मूल्य, सामाजिक मानदंड, आर्थिक संरचनाएँ और सरकारी नीतियाँ शामिल हैं। उदाहरण के लिए, यदि किसी समाज में विकलांगता को 'अभिशाप' मानने की सांस्कृतिक मान्यता है, तो यह सूक्ष्म और मध्य तंत्रों को भी प्रभावित करेगी। इसके विपरीत, यदि सरकार समावेशी शिक्षा के लिए मजबूत नीतियाँ बनाती है, तो यह वृहत तंत्र सकारात्मक प्रभाव डालता है। यह स्तर शासन की व्यापक भूमिका को रेखांकित करता है।

- ***काल तंत्र (Chronosystem):*** यह तंत्र समय के आयाम को दर्शाता है, जो बच्चे के विकास और उसके परिवेश में होने वाले निरंतर परिवर्तनों को रेखांकित करता है। इसमें जीवन के विभिन्न पड़ावों पर होने वाले व्यक्तिगत बदलावों के साथ-साथ व्यापक सामाजिक-ऐतिहासिक घटनाक्रम और नई नीतियों का क्रियान्वयन भी शामिल है। यह स्तर स्पष्ट करता है कि समय के साथ बदलते हालात और ऐतिहासिक संदर्भ किस प्रकार बच्चे के अनुभवों और उसके विकास की दिशा को प्रभावित करते हैं।

ब्रॉन्फेनब्रेनर का यह मॉडल हमें यह समझने में सहायता करता है कि आरोही के विकास को समझने के लिए केवल यह देखना पर्याप्त नहीं है कि वह स्कूल में क्या सीख रही है। हमें यह भी देखना होगा कि उसके परिवार का उसके प्रति क्या दृष्टिकोण है, स्कूल और परिवार के बीच कैसा संवाद है, स्थानीय समुदाय में विकलांगता के प्रति क्या धारणाएँ हैं, सरकार ने क्या नीतियाँ बनाई हैं, और समय के साथ इनमें क्या बदलाव आ रहे हैं।

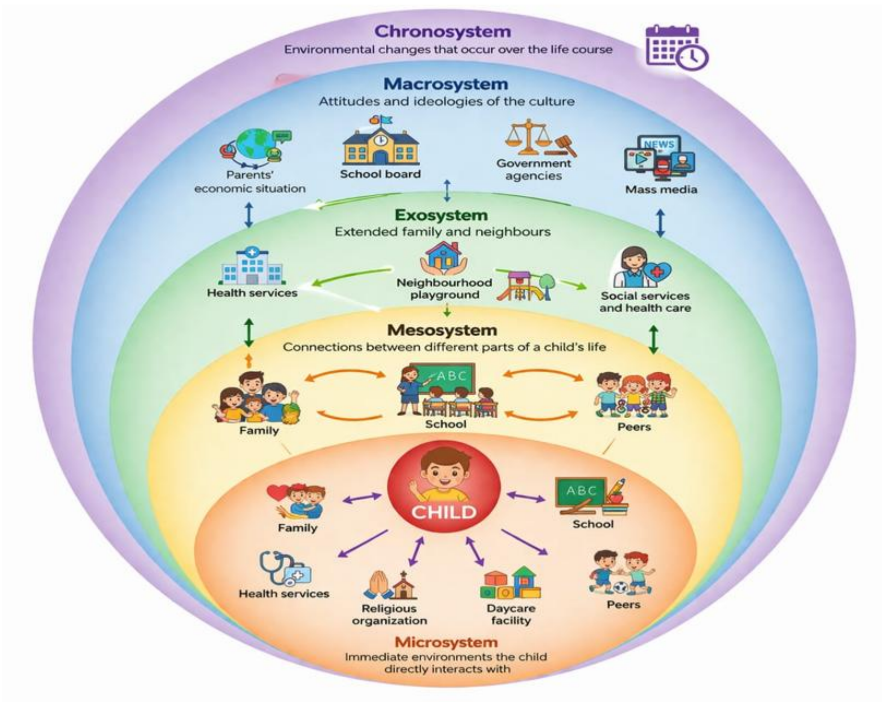

चित्र 1: समावेशी शिक्षा के संदर्भ में ब्रॉन्फेनब्रेनर के पारिस्थितिक तंत्र मॉडल का वैचारिक प्रतिरूप

2.3.2 विकलांगता का सामाजिक मॉडल

1980 के दशक में ब्रिटिश समाजशास्त्री माइकल ओलिवर द्वारा प्रतिपादित विकलांगता का सामाजिक मॉडल, इस विषय को समझने के प्रचलित प्रतिमानों में एक युगांतरकारी परिवर्तन (Paradigm Shift) का सूत्रपात करता है। यह मॉडल विकलांगता को 'व्यक्तिगत त्रासदी' या 'चिकित्सीय दोष' के रूप में देखने वाले पारंपरिक दृष्टिकोण को चुनौती देता है। ओलिवर का यह तर्क न केवल विकलांगता की रूढ़ियों को तोड़ता है, बल्कि 'अक्षमता' (Impairment) और 'विकलांगता' (Disability) के मध्य एक स्पष्ट विभाजक रेखा भी स्थापित करता है।

चिकित्सीय मॉडल विकलांगता को व्यक्ति की शारीरिक या मानसिक सीमाओं से उत्पन्न एक व्यक्तिगत समस्या के रूप में देखता है। इस दृष्टिकोण के अंतर्गत, समाधान मुख्य रूप से व्यक्ति के उपचार एवं पुनर्वास या उसे समाज की प्रचलित व्यवस्था के अनुकूल बनाने पर केंद्रित होता है। इसके विपरीत, **सामाजिक मॉडल** यह तर्क देता है कि विकलांगता व्यक्ति की अपनी सीमाओं का नहीं, बल्कि समाज द्वारा निर्मित विभिन्न अवरोधों का परिणाम है। ये बाधाएं अनिवार्य रूप से तीन श्रेणियों में विभाजित हैं:

- **भौतिक एवं अवसंरचनात्मक बाधाएँ (Physical and Structural Barriers):** इसमें वे तमाम भौतिक संरचनाएँ शामिल हैं जो दिव्यांग व्यक्तियों की स्वतंत्र गतिशीलता और पहुँच (Accessibility) को बाधित करती हैं। उदाहरण के तौर पर सीढ़ियाँ, संकीर्ण प्रवेश द्वार, अगम्य शौचालय, अनुपयुक्त फर्नीचर और सार्वजनिक परिवहन प्रणालियों में सुगमता का अभाव। ये बाधाएँ व्यक्ति की स्वावलंबन की क्षमता को सीमित कर देती हैं।

- **नीतिगत एवं संस्थागत बाधाएँ (Policy and Institutional Barriers):** ये उन नियमों, कानूनों और प्रक्रियाओं को संदर्भित करती हैं जो दिव्यांग व्यक्तियों के साथ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भेदभाव करती हैं। इसमें समावेशी नीतियों का अभाव, अपर्याप्त वित्तीय संसाधन, प्रशिक्षित शिक्षकों व विशेषज्ञों की कमी और एक लचीले व समावेशी पाठ्यक्रम की अनुपलब्धता शामिल है, जो उनकी पूर्ण भागीदारी में बाधक बनते हैं।

- **मनोवृत्ति एवं सामाजिक दृष्टिकोण संबंधी बाधाएँ (Attitudinal and Social Barriers):** समाज में व्याप्त पूर्वाग्रह, रूढ़िवादिता और नकारात्मक धारणाएँ इन बाधाओं का मुख्य आधार हैं। ये सबसे गहरी और चुनौतीपूर्ण बाधाएँ हैं क्योंकि ये हमारी सांस्कृतिक मान्यताओं और मूल्यों में गहराई से समाहित होती हैं, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक बहिष्करण (Social Exclusion) की स्थिति उत्पन्न होती है।

ओलिवर के शब्दों में, "यह समाज की असमर्थता है, न कि व्यक्ति की अक्षमता, जो विकलांगता पैदा करती है।" यह अंतर्दृष्टि हमें यह समझने में मदद करती है कि समावेशी शिक्षा का लक्ष्य केवल दिव्यांग बच्चों को मुख्यधारा में शामिल करना नहीं, बल्कि उस मुख्यधारा को ही इतना लचीला और समावेशी बनाना है कि वह सभी बच्चों की विविधता को समायोजित कर सके।

इस मॉडल के अनुसार, यदि आरोही स्कूल नहीं जा पाती, तो समस्या उसके सेरेब्रल पाल्सी में नहीं है, बल्कि उन रैंपों में है जो शासन ने नहीं बनवाए, उन शिक्षकों में है जिन्हें शासन ने समावेशी शिक्षा का प्रशिक्षण नहीं दिया, और उस समुदाय में है जो उसे स्वीकार नहीं करता। यहाँ परिवार की भूमिका मात्र देखभाल तक सीमित नहीं रहती, बल्कि इन व्यवस्थागत बाधाओं के विरुद्ध मुखर होने और बालक के सशक्तीकरण (Empowerment) के लिए एक सुदृढ़ आधार बनने की होती है।

3. परिवार: समावेशी शिक्षा का प्रथम आधार स्तंभ

3.1 परिवार की केंद्रीयता: सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

यूरी ब्रॉन्फेनब्रेनर के पारिस्थितिक तंत्र सिद्धांत के अंतर्गत 'परिवार' सूक्ष्म तंत्र का प्राथमिक और सर्वाधिक प्रभावशाली घटक है। यह वह आधारभूत परिवेश है, जहाँ बालक की **अस्मिता (Identity)** का अंकुरण होता है, उसके **आत्म-बोध (Self-worth)** का विकास होता है और वह बाह्य जगत के साथ सार्थक अंतक्रिया करने के कौशल सीखता है। समावेशी शिक्षा के व्यापक परिप्रेक्ष्य में, परिवार की महत्ता और भी बढ़ जाती है; क्योंकि यही वह मौलिक इकाई है जो बालक की विशिष्ट आवश्यकताओं को न केवल गहराई से समझती है, बल्कि उसके अधिकारों के संरक्षण के लिए एक **सशक्त पैरोकार (Advocate)** की भूमिका भी निभाती है।

एपस्टीन (2011) के अनुसार, परिवार-विद्यालय-समुदाय भागीदारी का एक सैद्धांतिक ढाँचा है, जो बताता है कि इन तीनों के बीच सकारात्मक संबंध बच्चे के शैक्षणिक और सामाजिक-भावनात्मक विकास को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। शोध बताते हैं कि जिन बच्चों के परिवार उनकी शिक्षा में सक्रिय रूप से शामिल होते हैं, उनके शैक्षणिक प्रदर्शन में उल्लेखनीय सुधार होता है, उनमें आत्मविश्वास अधिक होता है, और वे विद्यालयी जीवन में अधिक सक्रिय रहते हैं।

3.2 परिवार की भूमिका के बहुआयामी आयाम

3.2.1 भावनात्मक सुरक्षा और आत्मबोध का निर्माण: किसी भी बच्चे की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता यह जानना है कि उन्हें वैसे ही स्वीकार किया जाता है जैसे वे हैं। विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों के लिए, यह आवश्यकता और भी गहरी हो जाती है, क्योंकि उन्हें अक्सर बाहरी दुनिया में अस्वीकृति और पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ता है। दस वर्षीय *मीरा* (डिस्लेक्सिया) की कल्पना करें। स्कूल में सहपाठी उसे 'मंदबुद्धि' कहकर चिढ़ाते हैं। यदि घर पर माता-पिता उसे यह एहसास दिलाते हैं कि डिस्लेक्सिया उसकी बुद्धिमत्ता का मापदंड नहीं है, कि उसकी अपनी विशेष क्षमताएँ हैं, तो यह बच्चा आत्मविश्वास के साथ इन चुनौतियों का सामना कर सकता है। यहाँ परिवार की भूमिका केवल सहायक की नहीं, बल्कि एक *सुरक्षा कवच* की है, जो बच्चे को बाहरी आघातों से बचाता है और उसके आत्म-सम्मान को बनाए रखता है।

3.2.2 अधिवक्ता और मध्यस्थ की भूमिका: विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के माता-पिता अक्सर अपने बच्चों के अधिकारों के लिए सबसे मजबूत आवाज़ बनते हैं। वे स्कूल प्रशासन से मिलते हैं, सरकारी योजनाओं की जानकारी प्राप्त करते हैं, और आवश्यक संसाधनों की माँग करते हैं। डॉ. सुसान शेफर के अनुसार, "माता-पिता अपने बच्चों के सबसे अच्छे वकील होते हैं।" यह अधिवक्ता की भूमिका समावेशी शिक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि अक्सर यह परिवार ही होते हैं, जो व्यवस्था की कमियों को सबसे पहले पहचानते हैं और उन्हें दूर करने का प्रयास करते हैं।

3.2.3 शैक्षिक साझेदार के रूप में परिवार: परिवार का शैक्षिक उत्तरदायित्व विद्यालय की सीमाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि यह घर और विद्यालय के मध्य एक **'अधिगम निरंतरता'** (Continuity of Learning) की मांग करता है। घर पर शिक्षण में सहायता, गृहकार्य में सक्रिय सहयोग और विद्यालयी गतिविधियों में सार्थक भागीदारी—ये सभी 'शैक्षिक साझेदारी' के अनिवार्य आयाम हैं। केरल में किए गए एक शोध के निष्कर्ष इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि जिन दिव्यांग बालकों के अभिभावक नियमित रूप से उनकी शिक्षा में संलग्न रहे और शिक्षकों के साथ निरंतर संवाद बनाए रखा, उनके **शैक्षणिक निष्पादन** (Academic Performance) में 40% तक का उल्लेखनीय सुधार देखा गया। यह साक्ष्य स्पष्ट रूप से रेखांकित करता है कि परिवार की सक्रिय भागीदारी न केवल वांछनीय है, बल्कि बालक की समग्र सफलता के लिए एक अनिवार्य उत्प्रेरक भी है।

3.2.4 प्रेरणा और आकांक्षा का स्रोत: परिवार बच्चे के लिए प्रेरणा का सबसे बड़ा स्रोत होता है। जब परिवार के सदस्य बच्चे की क्षमताओं में विश्वास करते हैं और उससे ऊँची आकांक्षाएँ रखते हैं, तो बच्चा भी उन आकांक्षाओं को पूरा करने का प्रयास करता है। स्टीफन हॉकिंग ने कहा था, "मेरे परिवार ने हमेशा मुझे यह एहसास दिलाया कि मैं कुछ भी कर सकता हूँ।"

3.2.5 विकासात्मक परिप्रेक्ष्य: परिवार की भूमिका बच्चे के विकास के विभिन्न चरणों में बदलती है। प्रारंभिक बाल्यावस्था में परिवार की भूमिका मुख्यतः देखभाल और प्रारंभिक उत्तेजना की होती है। स्कूली उम्र में यह शैक्षिक साझेदारी और अधिवक्ता की भूमिका में बदल जाती है। किशोरावस्था में, परिवार को बच्चे की बढ़ती स्वायत्तता का सम्मान करते हुए, उसे स्व-अधिवक्ता बनने में मदद करनी होती है।

3.3 परिवारों के समक्ष चुनौतियाँ

परिवार की भूमिका के प्रभावी निर्वहन में अनेक चुनौतियाँ आती हैं:

- ***सूचना का अभाव:*** यह सबसे बड़ी बाधा है। अधिकांश परिवारों, विशेषकर ग्रामीण और आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों को, सरकारी योजनाओं, कानूनी अधिकारों और शैक्षिक संसाधनों की जानकारी नहीं होती। यह सूचना विषमता (information asymmetry) परिवारों को निर्णय लेने में अक्षम बना देती है।

- ***सामाजिक कलंक:*** कई समुदायों में विकलांगता को अभिशाप माना जाता है। यह सामाजिक कलंक परिवारों को अपने बच्चे की समस्या को छिपाने या उसे सार्वजनिक स्थानों पर ले जाने से बचने के लिए प्रेरित करता है। गॉफमैन (1963) के कलंक सिद्धांत के अनुसार, यह कलंक न केवल बच्चे, बल्कि पूरे परिवार की सामाजिक पहचान को प्रभावित करता है।

- ***आर्थिक बोझ:*** विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की देखभाल में अतिरिक्त खर्च आता है जैसे चिकित्सा, थेरेपी, विशेष उपकरण, निजी ट्यूशन इत्यादि। यह आर्थिक बोझ गरीब परिवारों के लिए असहनीय हो सकता है और अक्सर परिवारों को अपने बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य के बीच चयन करने के लिए मजबूर करता है।

- ***भावनात्मक तनाव:*** विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के माता-पिता अक्सर अत्यधिक तनाव, चिंता और अवसाद का अनुभव करते हैं। बच्चे के भविष्य को लेकर अनिश्चितता, समाज की नकारात्मक प्रतिक्रियाएँ, और व्यवस्था से लगातार संघर्ष उनके मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं।

3.4 परिवार की भूमिका को सशक्त बनाने के उपाय

- ***सूचना का प्रसार:*** सरकारी योजनाओं और कानूनी अधिकारों के बारे में सरल भाषा में जानकारी उपलब्ध कराई जाए। इस जानकारी को ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुँचाने के लिए आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं, आशा कार्यकर्ताओं और स्वयंसेवी संगठनों का उपयोग किया जाए।
- ***माता-पिता सहायता समूह:*** हर ब्लॉक में माता-पिता के सहायता समूह (*Parents' Support Group*) बनाए जाएँ। ये समूह न केवल भावनात्मक समर्थन प्रदान करेंगे, बल्कि सूचना के आदान-प्रदान और सामूहिक वकालत के मंच के रूप में भी कार्य करेंगे।

- ***परामर्श सेवाएँ:*** हर जिले में परिवारों के लिए निशुल्क परामर्श सेवाएँ उपलब्ध कराई जाएँ, जहाँ वे अपनी भावनात्मक समस्याओं के बारे में बात कर सकें और मार्गदर्शन प्राप्त कर सकें।
- ***आर्थिक सहायता:*** सरकारी योजनाओं के माध्यम से आर्थिक सहायता उपलब्ध कराई जाए, और इन योजनाओं का लाभ लेने की प्रक्रिया को सरल बनाया जाए।

परिवार के बाद समावेशी शिक्षा के पारिस्थितिकी तंत्र में जो अगला महत्वपूर्ण स्तर उभरकर सामने आता है, वह समुदाय है। परिवार की सीमाओं से बाहर निकलते ही बच्चा जिस सामाजिक परिवेश से परिचित होता है, वही समुदाय उसके अनुभवों, संबंधों और सामाजिक पहचान को आकार देता है।

4. समुदाय: समावेशी शिक्षा का विस्तारित परिवार

4.1 समुदाय की अवधारणा

समुदाय वह विस्तारित परिवार है, जो व्यक्ति को सामाजिक पहचान, सांस्कृतिक मूल्य और सामूहिक चेतना प्रदान करता है। समावेशी शिक्षा के संदर्भ में, समुदाय की भूमिका केवल संसाधन उपलब्ध कराने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी संस्कृति के निर्माण में सहायक होती है, जहाँ विविधता को स्वीकार तथा उसका सम्मान किया जाता है।

प्रोफेसर टोनी बूथ के अनुसार, "समावेशी शिक्षा केवल स्कूलों का काम नहीं है; यह पूरे समुदाय की जिम्मेदारी है। समावेशी समुदाय ही समावेशी स्कूलों का निर्माण करते हैं।" पुटनम (2000) की *सामाजिक पूंजी* की अवधारणा यहाँ विशेष रूप से प्रासंगिक है। समुदाय के पास तीन प्रकार की सामाजिक पूंजी होती है:

- ***बंधनकारी पूंजी (Bonding Capital):*** समान स्थिति वाले परिवारों के बीच आपसी सहयोग।
- ***सेतु-निर्माण पूंजी (Bridging Capital):*** विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच संपर्क।
- ***संपर्क सूत्र पूंजी (Linking Capital):*** स्थानीय समुदाय का सरकारी संस्थानों से संपर्क।

4.2 समुदाय की भूमिका के आयाम

4.2.1 सामाजिक स्वीकृति और सांस्कृतिक परिवर्तन: समुदाय का सबसे महत्वपूर्ण योगदान एक ऐसा सामाजिक वातावरण तैयार करना है, जहाँ विविधता को स्वीकार किया जाता है। कर्नाटक के एक गाँव की कहानी इसका उदाहरण है। यहाँ के सरकारी स्कूल में एक आदिवासी बच्चे का दाखिला हुआ। शुरू में दूसरे बच्चे उससे दूरी बनाए रखते थे, उसकी भाषा और रहन-सहन का मज़ाक उड़ाते थे। तब गाँव के मुखिया ने एक सामुदायिक बैठक बुलाई और सभी से अपील की कि वे अपने बच्चों को समझाएँ कि हर व्यक्ति अलग होता है और यह अलगपन सम्मान का पात्र है। धीरे-धीरे माहौल बदला, और आज वह आदिवासी बच्चा स्कूल का सबसे लोकप्रिय बच्चा है। यहाँ समुदाय ने सांस्कृतिक परिवर्तन के मध्यस्थ के रूप में कार्य किया।

4.2.2 संसाधन जुटाना और सहायता प्रदान करना: समुदाय के पास ऐसे अद्वितीय और अनौपचारिक संसाधन होते हैं, जो अक्सर सरकारी तंत्र या औपचारिक शिक्षण संस्थानों के पास उपलब्ध नहीं होते जैसे स्थानीय ज्ञान, स्वयंसेवकों की शक्ति, सुदृढ़ सामाजिक नेटवर्क और स्वैच्छिक दान। इसे **'सामाजिक पूंजी' (Social Capital)** के रूप में देखा जा सकता है। बिहार के एक ग्रामीण अंचल का उदाहरण इस तथ्य को पुष्ट करता है: जब एक विद्यालय में दिव्यांग बालकों के लिए रैंप जैसी बुनियादी सुविधाओं का अभाव था, तब ग्राम पंचायत ने अपनी निधि से त्वरित निर्माण करवाया। इस कार्य में स्थानीय व्यवसायियों ने 'वित्तीय सहयोग' प्रदान किया और एक सेवानिवृत्त शिक्षक ने स्वेच्छा से 'अतिरिक्त उपचारात्मक कक्षाओं' (Remedial Classes) का उत्तरदायित्व संभाला। यह सामूहिक प्रयास सिद्ध करता है कि समावेशी शिक्षा केवल एक नीति नहीं, बल्कि एक साझा सामाजिक जिम्मेदारी है।

4.2.3 परिवार और विद्यालय के बीच सेतु: कई बार भाषा की बाधाओं, सामाजिक दूरी, या विश्वास की कमी के कारण परिवार और स्कूल के बीच संचार की कमी होती है। ऐसे मामलों में, समुदाय के सदस्य मध्यस्थ के रूप में कार्य कर सकते हैं। वे परिवारों को स्कूल से जोड़ सकते हैं, उनके मुद्दों को स्कूल प्रशासन के सामने प्रस्तुत कर सकते हैं, और स्कूल की अपेक्षाओं को परिवारों तक पहुँचा सकते हैं।

4.2.4 जागरूकता और वकालत: समुदाय के सक्रिय सदस्य सामुदायिक बैठकों, धार्मिक आयोजनों, त्योहारों और अन्य सार्वजनिक अवसरों पर समावेशी शिक्षा के प्रति जागरूकता फैला सकते हैं। वे सरकार से नीतियों के प्रभावी क्रियान्वयन की माँग भी कर सकते हैं और स्थानीय प्रशासन को जवाबदेह बना सकते हैं।

4.3 समुदाय की द्वंद्वात्मकता

यह स्वीकारना अनिवार्य है कि समुदाय सदैव सकारात्मक नहीं होता; वह समर्थन के साथ-साथ अवरोधक भी बन सकता है। जिस समाज में दिव्यांगता को 'कलंक' माना जाता है, वहाँ परिवार सामाजिक अलगाव और बच्चा आत्म-ग्लानि का शिकार होता है। अंततः जाति, वर्ग और लिंग आधारित सामाजिक असमानताएँ ही यह निर्धारित करती हैं कि समावेशन का लाभ वास्तव में किसे प्राप्त होगा और कौन हाशिए पर रहेगा।

4.4 समुदाय-आधारित समावेशी शिक्षा के मॉडल

समुदाय-आधारित समावेशी शिक्षा एक ऐसा दृष्टिकोण है, जो शिक्षा को स्कूल की चारदीवारी से बाहर ले जाकर पूरे समुदाय में फैलाता है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित पहल की जा सकती हैं:

- ***सामुदायिक संसाधन केंद्र:*** हर पंचायत में एक सामुदायिक संसाधन केंद्र स्थापित किया जाए, जहाँ बच्चे स्कूल के बाद पढ़ सकें, खेल सकें, और विभिन्न गतिविधियों में भाग ले सकें।
- ***बाल सभाएँ:*** नियमित बाल सभाओं का आयोजन किया जाए, जहाँ सभी बच्चे एक साथ मिलकर अपनी समस्याओं पर चर्चा कर सकें और समाधान खोज सकें।
- ***सामुदायिक पुस्तकालय:*** सामुदायिक पुस्तकालय स्थापित किए जाएँ, जहाँ ब्रेल पुस्तकें और ऑडियो पुस्तकें भी उपलब्ध हों।
- ***कौशल विकास कार्यशालाएँ:*** स्थानीय कारीगरों और कलाकारों के सहयोग से कौशल विकास कार्यशालाएँ आयोजित की जाएँ।

केरल के कुछ स्कूलों ने "सामुदायिक संसाधन केंद्र" स्थापित किए हैं, जहाँ स्कूल के घंटों के बाद भी बच्चे आ सकते हैं। इन केंद्रों को चलाने में स्थानीय युवा और सेवानिवृत्त शिक्षक मदद करते हैं। यह समुदाय-आधारित समावेशी शिक्षा का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

5. **शासनः नीति, संसाधन और संस्थागत ढाँचा**

5.1 शासन की अनिवार्य भूमिका

ब्रॉन्फेनब्रेनर के मॉडल में शासन की भूमिका मुख्यतःवृहत तंत्र में स्थित है, लेकिन इसका प्रभाव सभी निचली परतों पर पड़ता है। समावेशी शिक्षा के पारिस्थितिकी तंत्र में शासन की भूमिका सबसे व्यापक और सबसे निर्णायक है। शासन ही नीतियाँ बनाता है, कानून बनाता है, संसाधन आवंटित करता है, और क्रियान्वयन की निगरानी करता है। शासन के बिना, परिवार और समुदाय के प्रयास अधूरे रह जाते हैं। शासन से तात्पर्य केवल केंद्र और राज्य सरकारों से नहीं है, बल्कि इसमें स्थानीय निकाय (पंचायत, नगर निगम), शैक्षिक प्रशासन (शिक्षा विभाग, बीईओ, डीईओ), और विभिन्न नियामक संस्थाएँ भी शामिल हैं। यह एक बहुस्तरीय व्यवस्था है, जहाँ प्रत्येक स्तर की अपनी विशिष्ट जिम्मेदारियाँ होती हैं।

5.2 शासन की भूमिका के आयाम

शासन की भूमिका को तीन आयामों में समझा जा सकता है—*नियामक, वितरणात्मक, और सक्षमकर्ता*।

5.2.1 नियामक आयाम (Regulatory Dimension): समावेशी शिक्षा के सफल क्रियान्वयन में शासन की भूमिका सर्वाधिक निर्णायक है। इसका प्राथमिक उत्तरदायित्व एक स्पष्ट, व्यापक और व्यावहारिक नीति का निर्माण करना है। **राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020)** इसका उत्कृष्ट उदाहरण है, जो वंचित वर्गों के लिए 'समतामूलक एवं समावेशी शिक्षा' सुनिश्चित करने पर बल देती है। नीतियों की वास्तविक प्रभावशीलता के लिए उनका कानूनी आधार अनिवार्य है; **दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016 (RPWD Act 2016)** ने समावेशी शिक्षा को एक विधिक अधिकार (Legal Right) का स्वरूप प्रदान किया है। इसकी मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

- **श्रेणियों का विस्तार**: दिव्यांगता की श्रेणियों को 7 से बढ़ाकर 21 कर दिया गया है, ताकि अधिक से अधिक बच्चों को नीतिगत लाभ मिल सके।
- **निशुल्क शिक्षा**: 6 से 18 वर्ष तक के सभी दिव्यांग बच्चों के लिए 'निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा' का वैधानिक अधिकार।
- **शैक्षणिक आरक्षण**: उच्च शिक्षण संस्थानों में दिव्यांग छात्रों के लिए न्यूनतम 5% सीटों का आरक्षण सुनिश्चित किया गया है।

- **सुगम्यता एवं बुनियादी ढांचा**: शिक्षण संस्थानों में बाधारहित वातावरण (Ramps, Accessible Toilets), सहायक तकनीक (Assistive Technology) और विशेष शिक्षकों (Special Educators) की अनिवार्य व्यवस्था।

5.2.2 वितरणात्मक आयाम (Distributive Dimension): नीतियाँ और कानून तभी सार्थक होते हैं, जब उनके क्रियान्वयन के लिए पर्याप्त धन उपलब्ध हो। समग्र शिक्षा अभियान के तहत समावेशी शिक्षा के लिए अलग से बजट आवंटित किया गया है, जो वर्तमान में कुल शिक्षा बजट का लगभग 8-9% है। वित्तीय वर्ष 2024-25 में इस घटक के लिए लगभग 4,100 करोड़ रुपये का प्रावधान है। हालाँकि यह राशि पिछले वर्षों की तुलना में अधिक है, विशेषज्ञों का मानना है कि समावेशी शिक्षा के लिए कम से कम 15-20% बजट की आवश्यकता है।

5.2.3 सक्षमकर्ता आयाम (Enabling Dimension): यह समावेशन की प्रक्रिया का सबसे चुनौतीपूर्ण आयाम है, जहाँ नीतियों को धरातल पर उतारने हेतु आवश्यक संसाधनों का अभाव दिखता है। इसके मुख्य घटक निम्नलिखित हैं:

- **भौतिक अवसंरचना (Infrastructure):** सुगम्यता का भारी अभाव; यूनिसेफ के अनुसार केवल 15% विद्यालयों में रैंप और मात्र 8% में सुलभ शौचालयों की उपलब्धता है।
- **मानव संसाधन (Manpower):** विशेष शिक्षकों की भारी कमी; आवश्यक 1.2 लाख के विरुद्ध वर्तमान में केवल 50,000 शिक्षक ही उपलब्ध हैं।
- **क्षमता संवर्धन (Training):** DIET और SCERT द्वारा प्रशिक्षण कार्यक्रमों के बावजूद, शिक्षकों के कौशल और प्रशिक्षण की गुणवत्ता में व्यापक सुधार की आवश्यकता है।
- **प्रशासनिक संवेदीकरण:** नीतियों के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु प्रशासनिक अधिकारियों (BEO, BSA, DEO) को समावेशी दृष्टिकोण का गहन प्रशिक्षण देना अनिवार्य है।
- **सामुदायिक स्वामित्व (SMC):** स्कूल प्रबंधन समितियों (SMC) को समावेशी शिक्षा के महत्व और उनके दायित्वों के प्रति जागरूक करना।
- **सतत निगरानी एवं मूल्यांकन:** नियमित निरीक्षण, पारदर्शी डेटा संग्रह और सामुदायिक फीडबैक तंत्र के माध्यम से प्रगति की समीक्षा।

5.3 भारत में शासन की भूमिका का आलोचनात्मक मूल्यांकन

सकारात्मक पहलू:

- ***नीतिगत स्पष्टता:*** NEP 2020 और RPWD Act 2016 ने समावेशी शिक्षा को एक स्पष्ट दिशा दी है। ये दस्तावेज़ अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं (UNCRPD, SDG-4) के अनुरूप हैं।
- ***वित्तीय प्रतिबद्धता:*** समग्र शिक्षा अभियान के तहत समावेशी शिक्षा के लिए अलग से बजट आवंटित किया गया है।
- ***सहायक उपकरणों का वितरण:*** पिछले पाँच वर्षों में लाखों दिव्यांग बच्चों को निशुल्क सहायक उपकरण वितरित किए गए हैं।
- ***शिक्षक प्रशिक्षण:*** DIET और SCERT के माध्यम से लाखों शिक्षकों को समावेशी शिक्षा का प्रशिक्षण दिया गया है।

चुनौतियाँ और कमियाँ:

- ***नीति और क्रियान्वयन के बीच खाई:*** यह सबसे बड़ी समस्या है। केंद्र सरकार की नीतियाँ तो अच्छी हैं, लेकिन राज्य और जिला स्तर पर उनका क्रियान्वयन कमजोर है। नीतियाँ अक्सर कागजों तक सीमित रह जाती हैं।
- ***अपर्याप्त बजट:*** 8-9% बजट अपर्याप्त है। 15-20% की आवश्यकता है।
- ***शिक्षक प्रशिक्षण की गुणवत्ता:*** प्रशिक्षण की मात्रा तो बढ़ी है, लेकिन गुणवत्ता में सुधार की आवश्यकता है। अधिकांश प्रशिक्षण सैद्धांतिक हैं और उनमें व्यावहारिक पक्ष की कमी है।
- ***डेटा की कमी:*** दिव्यांग बच्चों के सटीक आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। विभिन्न स्रोतों (जनगणना, स्कूल सर्वेक्षण, UDID) के आँकड़ों में बड़ा अंतर है, जिससे योजना बनाने में कठिनाई होती है।
- ***विभागों के बीच समन्वय का अभाव:*** शिक्षा, स्वास्थ्य, समाज कल्याण, महिला एवं बाल विकास, ये सभी विभाग समावेशी शिक्षा से जुड़े हैं, लेकिन इनके बीच कोई समन्वय नहीं है। प्रत्येक विभाग अपने-अपने ढंग से काम करता है।

जब परिवार, समुदाय और शासन की भूमिकाओं का पृथक-पृथक विश्लेषण किया जाता है, तो यह स्पष्ट होता है कि इन तीनों की प्रभावशीलता उनके पारस्परिक

संबंधों और सहयोग पर निर्भर करती है। इसलिए अब यह आवश्यक है कि इन तीनों के बीच समन्वय की प्रक्रिया को समझा जाए।

6. त्रि-स्तरीय समन्वय: परिवार, समुदाय और शासन का अंतर्संबंध

6.1 समन्वय की अनिवार्यता

प्रोफेसर माइकल फुलान के अनुसार, "शैक्षिक सुधार तभी सफल होता है, जब सभी हितधारक एक साझा दृष्टिकोण के साथ काम करें, और उनके बीच निरंतर संवाद और समन्वय हो।" समावेशी शिक्षा की सफलता तभी संभव है, जब परिवार, समुदाय और शासन की भूमिकाएँ एक-दूसरे का पूरक बनकर काम करें। यह कोई यांत्रिक संयोग नहीं है, बल्कि एक जैविक प्रक्रिया है, जिसमें प्रत्येक घटक दूसरे को प्रभावित और संवर्धित करता है।

6.2 समन्वय के संस्थागत तंत्र

- ***स्कूल प्रबंधन समितियाँ (SMC):*** शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के तहत हर सरकारी स्कूल में एक स्कूल प्रबंधन समिति का गठन अनिवार्य है। इस समिति में माता-पिता (परिवार), स्थानीय निकाय के प्रतिनिधि (समुदाय), शिक्षक और विशेषज्ञ (शासन के प्रतिनिधि) शामिल होते हैं। यह समिति परिवार, समुदाय और शासन के बीच समन्वय का एक आदर्श मंच है।
- ***बाल संरक्षण समितियाँ:*** कई राज्यों में जिला और ग्राम स्तर पर बाल संरक्षण समितियाँ बनाई गई हैं, जिनमें सरकारी अधिकारी (शासन), पुलिस, स्वास्थ्य विभाग, शिक्षा विभाग, और सामुदायिक प्रतिनिधि (समुदाय) शामिल होते हैं। ये समितियाँ उन बच्चों की पहचान करती हैं, जो स्कूल से बाहर हैं या जिन्हें विशेष सहायता की आवश्यकता है।
- ***माता-पिता-शिक्षक संघ (PTA):*** यह परिवार और स्कूल के बीच समन्वय का सबसे पारंपरिक माध्यम है। नियमित बैठकें, संवाद और संयुक्त गतिविधियाँ बच्चों के विकास में सहायक होती हैं।

6.3 समन्वय का एकीकृत मॉडल

इस अध्ययन में प्रस्तावित *एकीकृत सहयोगी शासन मॉडल* निम्नलिखित स्तंभों पर टिका है:

- ***स्तर 1 (वृहत नीति स्तर):*** सरकार नीति, कानून और वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराती है।
- ***स्तर 2 (मध्य समन्वय स्तर):*** स्कूल प्रबंधन समितियाँ, बाल संरक्षण समितियाँ, और पंचायती राज संस्थाएँ इस स्तर पर कार्य करती हैं। ये वे संस्थागत मंच हैं, जहाँ सरकार का प्रतिनिधित्व (शिक्षक, अधिकारी) और समाज का प्रतिनिधित्व (अभिभावक, सामुदायिक नेता) एक साथ बैठते हैं।
- ***स्तर 3 (सूक्ष्म क्रियान्वयन स्तर):*** परिवार और समुदाय इस स्तर पर सीधे सहयोग करते हैं। यह क्षैतिज प्रक्रिया है, जिसमें माता-पिता सहायता समूह, स्वयंसेवी शिक्षक, और स्थानीय संगठन शामिल होते हैं।

6.4 सफल समन्वय के सूत्र

समन्वय को सफल बनाने के लिए आवश्यक तत्व हैं:

- ***साझा दृष्टिकोण (Shared Vision):*** *समस्त हितधारकों के मध्य एक एकीकृत और स्पष्ट लक्ष्य होना अनिवार्य है, जिसका मूल केंद्र प्रत्येक बालक का सर्वांगीण एवं समावेशी विकास सुनिश्चित करना हो।*
- ***स्पष्ट संचार:*** सूचनाओं का आदान-प्रदान स्पष्ट, नियमित और द्विदिश हो।
- ***विश्वास और सम्मान:*** सभी हितधारक एक-दूसरे की भूमिका का सम्मान करें और उन पर विश्वास करें।
- ***लचीलापन:*** आवश्यकतानुसार भूमिकाओं और रणनीतियों में बदलाव के लिए तैयार रहें।
- *जवाबदेही:* हर हितधारक अपनी भूमिका के प्रति जवाबदेह हो।

यद्यपि समावेशी शिक्षा के लिए नीतिगत प्रतिबद्धता और सामाजिक समर्थन दोनों मौजूद हैं, फिर भी इसके क्रियान्वयन में अनेक जटिल चुनौतियाँ सामने आती हैं। इन चुनौतियों का विश्लेषण किए बिना समावेशी शिक्षा के पारिस्थितिकी तंत्र को समझना अधूरा रहेगा।

7. भविष्य की दिशा

7.1 शासन के लिए सुझाव

1. ***बजट में वृद्धि:*** समावेशी शिक्षा के लिए बजट को बढ़ाकर कुल शिक्षा बजट का कम से कम 15% किया जाए। यह वृद्धि चरणबद्ध तरीके से अगले पाँच वर्षों में की जा सकती है।
2. ***एकीकृत डेटा प्रणाली:*** सभी दिव्यांग बच्चों का एक राष्ट्रीय डेटाबेस तैयार किया जाए, जो विभिन्न विभागों (शिक्षा, स्वास्थ्य, समाज कल्याण) को एक-दूसरे से जोड़े। यह डेटाबेस UDID पोर्टल से जोड़ा जा सकता है।
3. ***विभागीय समन्वय:*** शिक्षा, स्वास्थ्य, समाज कल्याण और महिला एवं बाल विकास विभागों के बीच समन्वय के लिए एक स्थायी तंत्र बनाया जाए। जिला स्तर पर एक संयुक्त टास्क फोर्स का गठन किया जाए।
4. ***स्थानीय निकायों को सशक्त बनाना:*** पंचायतों और नगर निगमों को समावेशी शिक्षा के क्रियान्वयन में अधिक अधिकार और संसाधन दिए जाएँ। स्थानीय निकायों के बजट में समावेशी शिक्षा के लिए अलग से राशि आवंटित की जाए।

7.2 समुदाय के लिए सुझाव

1. ***जागरूकता अभियान:*** मीडिया, सामुदायिक रेडियो, और स्थानीय कार्यक्रमों के माध्यम से विकलांगता और समावेशी शिक्षा के प्रति जागरूकता फैलाई जाए। स्कूलों में "समावेश सप्ताह" मनाया जाए।
2. ***सामुदायिक संसाधन केंद्र:*** हर पंचायत में एक सामुदायिक संसाधन केंद्र स्थापित किया जाए, जहाँ बच्चे स्कूल के बाद पढ़ सकें, खेल सकें, और विभिन्न गतिविधियों में भाग ले सकें। ये केंद्र स्थानीय युवाओं और सेवानिवृत्त शिक्षकों के सहयोग से संचालित हों।
3. ***स्वयंसेवी कार्यक्रम:*** युवाओं और सेवानिवृत्त नागरिकों को स्वयंसेवक के रूप में जोड़ा जाए, जो दिव्यांग बच्चों की मदद कर सकें। इन स्वयंसेवकों को "समावेश मित्र" के रूप में नामित किया जा सकता है।

7.3 परिवार के लिए सुझाव

1. ***माता-पिता सहायता समूह:*** हर ब्लॉक में माता-पिता सहायता समूह बनाए जाएँ, जहाँ माता-पिता अपने अनुभव साझा कर सकें और एक-दूसरे का समर्थन कर सकें। ये समूह स्थानीय स्तर पर समस्याओं की पहचान कर उनका समाधान खोज सकते हैं।
2. ***परामर्श सेवाएँ:*** हर जिले में परिवारों के लिए निशुल्क परामर्श सेवाएँ उपलब्ध कराई जाएँ। इन सेवाओं में मनोवैज्ञानिक परामर्श, कानूनी सलाह, और शैक्षिक मार्गदर्शन शामिल हो।
3. ***वित्तीय सहायता:*** सरकारी योजनाओं के बारे में परिवारों को जागरूक किया जाए, और उन्हें इनका लाभ लेने में मदद दी जाए। आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और आशा कार्यकर्ताओं को इस कार्य में प्रशिक्षित किया जाए।

8. निष्कर्ष

इस अध्याय के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि समावेशी शिक्षा मात्र एक प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक जीवंत पारिस्थितिकी तंत्र है। इसमें परिवार, समुदाय और शासन तीन अनिवार्य स्तंभों के रूप में कार्य करते हैं। ब्रॉन्फेनब्रेनर के पारिस्थितिक सिद्धांत और विकलांगता के सामाजिक मॉडल के सम्मिलन से निर्मित 'पारिस्थितिक-सामाजिक मॉडल' यह रेखांकित करता है कि बाधाएं व्यक्ति की सीमाओं में नहीं, बल्कि समाज द्वारा निर्मित भौतिक, संस्थागत और दृष्टिकोण संबंधी संरचनाओं में निहित हैं। इस व्यवस्था में परिवार वह आधार है जहाँ बच्चे का आत्मविश्वास पनपता है; समुदाय वह विस्तार है जो सामाजिक स्वीकृति और सामूहिक चेतना प्रदान करता है; और शासन वह सुदृढ़ ढाँचा है जो नीतिगत एवं कानूनी संरक्षण सुनिश्चित करता है। यद्यपि भारत ने RPWD अधिनियम 2016 और NEP 2020 के माध्यम से अपनी मज़बूत प्रतिबद्धता दर्शाई है, किंतु वास्तविक चुनौती नीति और क्रियान्वयन के बीच के अंतराल को पाटने की है। इसके लिए बजटीय वृद्धि, एकीकृत डेटा प्रणाली और स्थानीय निकायों का सशक्तिकरण अपरिहार्य है। नेल्सन मंडेला के शब्दों में, "शिक्षा सबसे शक्तिशाली हथियार है जिसका उपयोग आप दुनिया बदलने के लिए कर सकते हैं।" समावेशी शिक्षा इसी हथियार का सबसे मानवीय और न्यायसंगत रूप है। यह मात्र एक प्रशासनिक विकल्प नहीं, बल्कि हमारी साझा नैतिक जिम्मेदारी और सामूहिक संकल्प है। जब हम विविधता का सम्मान करते हैं, तो हम केवल शिक्षित नहीं करते, बल्कि एक ऐसे न्यायपूर्ण समाज की नींव रखते हैं जहाँ 'कोई पीछे न छूटे', जहाँ हर बच्चा यह महसूस करे कि वह मूल्यवान है, और जहाँ शिक्षा वास्तव में सबके लिए समान हो। क्योंकि जब तक सबके लिए शिक्षा नहीं, तब तक सबके लिए न्याय नहीं। और जब तक सबके लिए न्याय नहीं, तब तक सच्चा समावेशन नहीं। अंततः शिक्षा की सार्वभौमिकता ही सामाजिक न्याय और वास्तविक समावेशन की एकमात्र कसौटी है।

REFERENCES

- Ainscow, M. (2005). Developing inclusive education systems: What are the levers for change? *Journal of Educational Change*, 6(2), 109-124.
- Ainscow, M., Booth, T., & Dyson, A. (2006). *Improving schools, developing inclusion*. Routledge.
- Antoninis, M., April, D., Barakat, B., Bella, N., D'Addio, A. C., Eck, M., ... & Zekrya, L. (2020). All means all: An introduction to the 2020 Global Education Monitoring Report on inclusion. *Prospects*, *49*(3), 103-109.
- Booth, T., & Ainscow, M. (2002). Index for inclusion: developing learning and participation in schools. Centre for Studies on Inclusive Education (CSIE), Rm 2S203 S Block, Frenchay Campus, Coldharbour Lane, Bristol BS16 1QU, United Kingdom, England (24.50 British pounds).
- Bronfenbrenner, U. (1979). *The ecology of human development: Experiments by nature and design*. Harvard University Press.
- Epstein, J. L. (2002). School, family, and community partnerships: Preparing educators and improving schools. *ADOLESCENCE-SAN DIEGO-*, *37*, 435-435.
- Florian, L. (2013). The SAGE handbook of special education.
- Fullan, M. (2016). *The new meaning of educational change*. Teachers college press.
- Goffman, E. (2009). *Stigma: Notes on the management of spoiled identity*. Simon and schuster.
- Government of India. (2016). *The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016*. Ministry of Law and Justice.
- Government of India. (2020). *National Education Policy 2020*. Ministry of Education.
- MacKay, D. (2006). The United Nations Convention on the rights of persons with disabilities. *Syracuse J. Int'l L. & Com.*, *34*, 323.
- Mittler, P. (2012). *Working towards inclusive education: Social contexts*. David Fulton Publishers.
- Oliver, M. (2018). *Understanding disability: From theory to practice*. Bloomsbury publishing.
- Raza, M. M., & Alam, A. (2026). Samaveshi shiksha mein parivar, samudaya evam shasan ki bhoomika [Role of family, community, and governance in inclusive education]. In Samaveshi shiksha: Chunautiyan evam sambhavnayein [Inclusive education: Challenges and prospects] (pp. 132–155). Devyani Publishers & Distributors.
- Raza, M. M., & Begum, S. (2022). Community-based rehabilitation: A strategy to promote inclusion of persons with disabilities in developing countries. *Excellence International Journal of Education and Research*, *13*(3).
- Raza, M. M., Mumtaz Bano, M., & Begum, S. From Segregation to Inclusion: Assessing India's Journey towards Inclusive Education.
- Sharma, U., Forlin, C., & Loreman, T. (2008). Impact of training on pre-service teachers' attitudes and concerns about inclusive education and sentiments about persons with disabilities. *Disability & society*, *23*(7), 773-785.
- Singal, N. (2020). Working in Partnership with Multiple Stakeholders on Global Policy Processes: Disability and Inclusive Education.
- Slee, R. (2011). *The irregular school: Exclusion, schooling and inclusive education*. Routledge.
- UNESCO, A. (2018). Guide for ensuring inclusion and equity in education (2017), United Nations Educational. *Scientific and Cultural Organization*, *7*.
- United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization. (1994, June). The Salamanca statement and framework for action on special needs education. In *World Conference on Special Needs Education: Access and Quality*. Salamanca, Spain: unesco.